द्वैतवाद और अनेकान्त

युवाचार्य महाप्रज्ञ जी (मुनि नथमल)

हम जिस जगत् में सांस ले रहे हैं वह द्वन्द्वात्मक है। उसमें चेतन और अचेतन—ये दो द्रव्य निरन्तर सक्रिय हैं। इन दोनों का अस्तित्व स्वतंत्र है—चेतन अचेतन से उत्पन्न नहीं है और अचेतन चेतन से उत्पन्न नहीं है। चेतन भी त्रैकालिक है और अचेतन भी त्रैकालिक है। इन दोनों में सह-अस्तित्व है। दोनों परस्पर मिले-जुले रहते हैं। शरीर अचेतन है, आत्मा चेतन है। दोनों में पूर्ण सामंजस्य है। दोनों एक-दूसरे का सहयोग करते हैं। चेतन को अचेतन के माध्यम से और अचेतन को चेतन के माध्यम से समझने में सुविधा होती है। चेतन से अचेतन और अचेतन से चेतन प्रभावित है। अचेतन में ज्ञान नहीं है, इसलिए वह चेतन के प्रभाव से मुक्त होने की बात सोच नहीं सकता। चेतन में ज्ञान है, इसलिए वह अचेतन के प्रभाव से मुक्त होने की बात सोचता है और उसके लिए उपाय करता है। इस तत्त्ववाद के आधार पर चेतन तत्त्व दो भागों में विभक्त है—

१. अचेतन प्रभावित चेतन—बद्धजीव।
२. अचेतन से अप्रभावित चेतन—मुक्तजीव।

बद्धजीव की व्याख्या सापेक्ष दृष्टि से की जा सकती है। अचेतन की सापेक्षता के बिना बद्धजीव की व्याख्या नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से बद्धजीव का अस्तित्व सापेक्ष-सत्य है और मुक्तजीव का अस्तित्व निरपेक्ष-सत्य है। इसी प्रकार चेतन से संपृक्त अचेतन पदार्थ परतंत्र होते हैं और चेतन से असंपृक्त अचेतन पदार्थ स्वतंत्र होते हैं। परतंत्र अचेतन पदार्थ सापेक्ष-सत्य है और स्वतंत्र अचेतन पदार्थ निरपेक्ष-सत्य है।

जैन तार्किकों ने पक्ष और प्रतिपक्ष के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनका तर्कसूत्र है— जो सत् है वह प्रतिपक्षयुक्त है। इस तर्क का आधार आगम सूत्र में भी मिलता है। स्थानांग में बतलाया गया है कि लोक में जो कुछ है वह सब द्विपदावतार (दो-दो पदों में अवतरित) होता है—

१. जीव और अजीव।
२. त्रस और स्थावर।
३. सयोनिक और अयोनिक।
४. आयु सहित और आयु रहित।
५. इन्द्रिय सहित और इन्द्रिय रहित।
६. वेद सहित और वेद रहित।
७. रूप सहित और रूप रहित।
८. पुद्गल सहित और पुद्गल रहित।
९. संसार समापन्नक।
१०. असंसार समापन्नक।
११. शाश्वत और अशाश्वत।
१२. आकाश और नो-आकाश।
१३. धर्म और अधर्म।
१४. बंध और मोक्ष।
१५. पुण्य और पाप।
१६. आस्रव और संवर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. वेदना और निर्जरा।[1]

त्रयात्मक अस्तित्व

चेतन और अचेतन—इन दोनों द्रव्यों का अस्तित्व त्रयात्मक है। उसके तीन अंग हैं—ध्रौव्य, उत्पाद और व्यय।

अस्तिकाव्य द्रव्य का ध्रौव्य अंश है। पांच द्रव्य अस्तिकाय वाले हैं—

१. धर्मास्तिकाय
२. अधर्मास्तिकाय
३. आकाशास्तिकाय
४. पुद्गलास्तिकाय
५. जीवास्तिकाय

अस्तिकाय का अर्थ है—प्रदेश-राशि। पुद्गलास्तिकाय की सबसे छोटी इकाई परमाणु है। वियुक्त-अवस्था में परमाणु और संयुक्त अवस्था में प्रदेश कहलाता है। दो परमाणुओं के मिलने से बना हुआ स्कंध द्विप्रदेशी-स्कंध कहलाता है। पुद्गलास्तिकाय को छोड़कर शेष चार अस्तिकाय अविभागी हैं। इनका एक ही स्कन्ध होता है। उसका कोई भी भाग कभी पृथक नहीं होता, इसलिए चार अस्तिकायों के प्रदेश होते हैं, परमाणु नहीं होते। अवगाह की दृष्टि से एक परमाणु एक प्रदेश के तुल्य होता है। एक जीवास्तिकाय के असंख्य प्रदेश होते हैं और वे सब चैतन्यमय होते हैं। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के असंख्य प्रदेश होते हैं। आकाश के अनन्त प्रदेश होते हैं। इनका अपना-अपना विशेष गुण है। धर्मास्तिकाय के सभी प्रदेशों में गति में सहयोगी बनने की क्षमता है। अधर्मास्तिकाय के सभी प्रदेशों में स्थिति में सहयोगी बनने की क्षमता है। आकाश के प्रदेशों में अवगाह देने की क्षमता है। पुद्गलास्तिकाय के परमाणुओं और प्रदेशों में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श की क्षमता है। इन पांचों अस्तिकायों के अपने-अपने विशेष गुण हैं। वे गुण अपने-अपने द्रव्य से कभी पृथक् नहीं होते और न कभी एक-दूसरे में परिवर्तित होते हैं। पांचों अस्तिकायों की द्रव्य राशि (Mass) भी ध्रुव है। पुद्गलास्तिकाय विभागी-द्रव्य है, इसलिए कभी परमाणु संयुक्त होकर स्कंध निर्मित्त कर देते हैं और कभी वियुक्त होकर वे परमाणु बन जाते हैं। अविभागी अस्तिकायों का एक प्रदेश भी कम हो तो वे अस्तिकाय नहीं कहलाते। उनका पूर्ण स्कंध ही अस्तिकाय कहलाता है।

गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा—
'भंते ! धर्मास्तिकाय के एक, दो, तीन आदि प्रदेशों को धर्मास्तिकाय कहा जा सकता है ?'
भगवान् ने कहा—'गौतम ! नहीं कहा जा सकता।'
'भंते ! उन्हें धर्मास्तिकाय क्यों नहीं कहा जा सकता ?'
'गौतम ! चक्र का खंड चक्र कहलाता है, या पूरा चक्र चक्र कहलाता है ?'
'भंते ! चक्र का खंड चक्र नहीं कहलाता, पूरा चक्र चक्र कहलाता है।'
'गौतम ! छत्र का खंड छत्र कहलाता है या पूरा छत्र छत्र कहलाता है ?
'भंते ! छत्र का खंड छत्र नहीं कहलाता, पूरा छत्र छत्र कहलाता है।'
'गौतम ! चर्मरत्न का खण्ड चर्मरत्न कहलाता है या पूरा चर्मरत्न चर्मरत्न कहलाता है ?'
'भंते ! चर्मरत्न का खण्ड चर्मरत्न नहीं कहलाता है, पूरा चर्मरत्न चर्मरत्न कहलाता है।'
'गौतम ! दंड का खण्ड दंड कहलाता है या पूरा दंड दंड कहलाता है ?'
'भंते ! दंड का खंड दंड नहीं कहलाता, पूरा दंड दंड कहलाता है।'
'गौतम ! दुष्यपट्ट का खंड दुष्यपट्ट कहलाता है या पूरा दुष्यपट्ट दुष्यपट्ट कहलाता है ?'
'भंते ! दुष्यपट्ट का खंड दुष्यपट्ट नहीं कहलाता, पूरा दुष्यपट्ट दुष्यपट्ट कहलाता है ?'
'गौतम ! आयुध का खण्ड आयुध कहलाता है या पूरा आयुध आयुध कहलाता है ?'
'भंते ! आयुध का खंड आयुध नहीं कहलाता, पूरा आयुध आयुध कहलाता है।'
'गौतम ! मोदक का खंड मोदक कहलाता है या पूरा मोदक मोदक कहलाता है ?'
'भंते ! मोदक का खंड मोदक नहीं कहलाता, पूरा मोदक मोदक कहलाता है।'

---

१. ठाणं, २।१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'इसी प्रकार गौतम ! धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को यावत् एक प्रदेश न्यून धर्मास्तिकाय को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता। प्रतिपूर्ण प्रदेशों को ही धर्मास्तिकाय कहा जा सकता है।'

'अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के लिए भी यही नियम है।'[1]

द्रव्य, द्रव्यराशि और उसका विशेष गुण त्रैकालिक (सार्वदेशिक और सार्वकालिक) होने के कारण ध्रौव्य हैं।

द्रव्य के प्रदेश न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं, इसलिए वे ध्रुव हैं। उन्हें जानने वाला नय द्रव्यार्थिक नय है। यही निश्चय नय है।

द्रव्य के प्रदेशों में परिणमन होता है। वह उत्पाद और व्यय है। उसे जानने वाला नय पर्यायार्थिक नय है।[2] यही व्यवहार नय है।

निश्चय नय इन्द्रिय सीमा को पारकर केवल आत्मा से होने वाला अतीन्द्रिय ज्ञान है। इसलिए वह व्यक्त पर्याय (व्यंजन पर्याय अथवा द्रव्य का वर्तमान स्थूल पर्याय) को भेदकर द्रव्य के मूल स्वरूप तक पहुंच जाता है। चीनी पुद्गल का एक व्यक्त पर्याय है। निश्चय नय से जानने वाले के लिए चीनी केवल सफेद रंग और मिठास वाली नहीं है, वह एक पौद्गलिक स्कंध है, जिसमें प्रत्यक्ष हो रहे हैं—पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श—पुद्गल के मौलिक गुण।

निश्चय नय से जानने वाला द्रव्य के विभिन्न पर्यायों को मौलिक द्रव्य नहीं मानता, किन्तु वह मूल द्रव्य को ही द्रव्य के रूप में स्वीकृति देता है। इसलिए उसकी दृष्टि में द्रव्य का जगत् सिकुड़ जाता है, अभेद प्रधान बन जाता है।

व्यवहार नय बाह्य माध्यमों की सहायता से होने वाला इन्द्रिय ज्ञान है। इसलिए वह अव्यक्त पर्याय की सीमा में प्रवेश नहीं कर पाता, केवल व्यक्त पर्याय को ही जान पाता है। चीनी में सभी वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं, फिर भी व्यवहार नय से जानने वाला उसके व्यक्त पर्याय (सफेद रंग और मिठास) को ही जान पाता है। उसमें द्रव्य के मूल स्वरूप तक पहुंचने की क्षमता नहीं होती। अतः व्यवहार नय की दृष्टि में द्रव्य का जगत् बहुत बड़ा होता है। वह व्यक्त पर्याय के आधार पर प्रत्येक द्रव्य को स्वतंत्र रूप में स्वीकार कर लेता है। इसमें भेद प्रधान बन जाता है।

अनेकान्त के अनुसार द्वैत और अद्वैत भेद और अभेद के आधार पर प्रतिष्ठित हैं। द्वैत के बिना अद्वैत और अद्वैत के बिना द्वैत नहीं हो सकता। अभेद का चरम बिन्दु है अस्तित्व। उसकी अपेक्षा अद्वैत सिद्ध होता है। अपने-अपने विशेष गुण की अपेक्षा से द्वैत सिद्ध होता है। जैसे दो द्रव्यों में अभेद और भेद का सम्बन्ध पाया जाता है, वैसे ही एक द्रव्य में भी अभेद और भेद दोनों पाए जाते हैं। गुण और पर्याय द्रव्य (द्रव्य की प्रदेश राशि) में होते हैं। उसके बिना नहीं होते। इस अपेक्षा से द्रव्य, गुण और पर्याय में परस्पर अभेद है। जो द्रव्य है वह गुण नहीं है और जो गुण है वह पर्याय नहीं है। इस अपेक्षा से तीनों—द्रव्य, गुण और पर्याय में भेद है। एक ही द्रव्य द्रव्य की दृष्टि से एक और पर्याय की दृष्टि से अनेक है। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से द्रव्य एक या अखण्ड है। पर्यायार्थिक नय की अयेक्षा से द्रव्य में प्रदेश, गुण और पर्याय होते हैं, अतः वह अनेक है।

ध्रौव्य द्रव्य का शाश्वत अंग है। उत्पन्न होना और विनष्ट होना—ये द्रव्य के अशाश्वत अंग हैं। द्रव्य जगत् का यह सार्वभौम नियम है कि ध्रौव्य के बिना उत्पाद और व्यय नहीं होते तथा उत्पाद और व्यय से पृथक् कहीं ध्रौव्य नहीं मिलता। दोनों विरोधी स्वभाव के हैं, पर दोनों में सह-अस्तित्व है और दोनों परस्पर एक-दूसरे के पूरक हैं। द्रव्य में शाश्वत और अशाश्वत का विरोधी युगल विद्यमान है। उसमें केवल एक विरोधी युगल ही नहीं किन्तु ऐसे अनन्त विरोधी युगल विद्यमान हैं। उन सबमें सह-अस्तित्व है। विरोध और सह-अस्तित्व ये दोनों सार्वभौम नियम हैं। इस जगत् में ऐसा कोई भी अस्तित्व नहीं है जिसका पक्ष हो और प्रतिपक्ष न हो तथा पक्ष और प्रतिपक्ष में सह-अस्तित्व न हो। यह दार्शनिक सत्य अब वैज्ञानिक सत्य भी बन रहा है। वैज्ञानिक जगत् में प्रतिकण और प्रतिपदार्थ के सिद्धान्त मान्यता प्राप्त कर रहे हैं। परमाणु में जितनी संख्या एलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन आदि कणों की होती है, उतनी ही संख्या प्रतिकणों की होती है। एलेक्ट्रोन का प्रतिकण पोजिट्रोन, प्रोटोन का प्रतिप्रोटोन और न्यूट्रोन का प्रतिन्यूट्रोन होता है। परमाणु के नाभिक का जब विखंडन होता है तब ये प्रतिकण एक सैकेण्ड के करोड़वें भाग से भी कम समय के लिए अस्तित्व में आते हैं। उस समय कण और प्रतिकण में टकराव होता है। फलस्वरूप गामा किरणें या फोटोन्स पैदा होते हैं।

वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रतिकण कण का प्रतिद्वन्द्वी होते हुए भी उसका पूरक है। वे दोनों साथ-साथ रहते हैं, परस्पर एक-दूसरे का सहयोग करते हैं और उनमें क्रिया-प्रतिक्रिया का व्यवहार भी चलता है। उनके सह-अस्तित्व या सहयोग, विरोध या संघर्ष,

---

१. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवती, २।१३०-१३५

२. 'उप्पज्जंति वियंति य, भावा नियमेण पज्जवनयस्स।
दव्वट्ठियस्स सव्वं, अणुप्पन्नमविणट्ठं॥,' सन्मति प्रकरण, १।११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रिया या प्रतिक्रिया को पेण्डुलम के उदाहरण से समझा जा सकता है।

अनेकान्तवाद के आधार पर चार विरोधी युगलों का निर्देश किया जाता है—

१. शाश्वत और परिवर्तन।

२. सत् और असत् (अस्तित्व और नास्तिक)

३. सामान्य और विशेष।

४. वाच्य और अवाच्य।

इन चार विरोधी युगलों का निर्देश केवल एक संकेत है। द्रव्य में इस प्रकार के अनन्त विरोधी युगल हैं। उन्हीं के आधार पर अनेकान्त का सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ है।

ध्रौव्य प्रकंपन के मध्य अप्रकंपन है, परिवर्तन के मध्य शाश्वत है। पर्याय (उत्पाद-व्यय) अप्रकंप की परिक्रमा करता हुआ प्रकंपन और शाश्वत की प्रक्रिमा करता हुआ परिवर्तन है। द्रव्य ध्रौव्य का प्रतिनिधित्व करता है और पर्याय परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करता है। अस्तित्व में अपरिवर्तन और परिवर्तनशील—दोनों प्रकार के तत्त्व विद्यमान रहते हैं। कोई भी अस्तित्व शाश्वत की सीमा से परे नहीं है और कोई भी अस्तित्व परिवर्तन की मर्यादा से मुक्त नहीं है।

द्वैतवाद—पुरुष और प्रकृति के द्वैतवाद पर सांख्य-दर्शन निम्नलिखित युक्तियों के माध्यम से पहुंचता है—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्॥ सांख्यकारिका, का० ९

१. अभावात्मक पदार्थ किसी भी क्रिया का विषय नहीं हो सकता। आकाशकुसुम उत्पन्न नहीं किया जा सकता। असत् को कभी भी सत् नहीं बनाया जा सकता। नीले को सहस्र कलाकार भी पीले में परिवर्तित नहीं कर सकते—**नहि नीलं शिल्पिसहस्रेणापि पीतं कर्तुं शक्यते—सांख्यतत्त्वकौमुदी।**

२. उत्पन्न पदार्थ उस सामग्री से भिन्न नहीं है, जिससे कि वह बना है—**उपादाननियमात्—सांख्यसूत्र, १/११५।**

३. उत्पन्न होने से पूर्व वह सामग्री के रूप में विद्यमान रहता है। यदि इसे स्वीकार न किया जाए तो हर किसी वस्तु से प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हो सकेगी—

असत्त्वे नास्ति सम्बन्धः कारणैः सत्त्वसंगिभिः।
असम्बद्धस्य चोत्पत्तिमिच्छतो न व्यवस्थितिः॥

४. कार्यकारणभाव-सम्बन्धी योग्यता उसी से सम्बद्ध रहती है जिसके अन्दर आवश्यक क्षमता रहती है—**शक्तिश्च शक्तिमत्सम्बन्धरूपा संयोगवदुभयत्र या शक्याभावे न सम्भवतीति शक्यभावोऽभ्युपेयः। इति न्यायकणिकाचार्याः।**

५. कार्य का स्वरूप वही होता है जो कारण का होता है। अपने तात्त्विक रूप में कपड़ा धागों से भिन्न नहीं है। ऐसे पदार्थों में जो एक-दूसरे से तात्त्विक रूप में भिन्न हैं, कार्यकारणसम्बन्ध नहीं हो सकता—**कारणभावाच्च कार्यस्य कारणात्मकत्वात्—सांख्यतत्त्वकौमुदी। कारणभावात् कारणस्य सत्त्वादित्यर्थ अथवा कारण-स्वभावात्, यत्स्वभावं कारणं तत्स्वभावं कार्यम्—जयमंगला।**

अनेकान्तवाद—अनेक धर्मों के एक रसात्मक मिश्रण से उत्पन्न जात्यन्तरभाव को अनेकान्त कहते हैं—**को अणेयंतो णाम? जच्चंतरत्तं। धवला, १५/२५/१**

अनेकान्त के बिना वस्तुतत्त्व सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह भेद ज्ञान से अनेक और अभेद ज्ञान से एक है। अतः भेदाभेद ज्ञान (अनेकान्त) ही सत्य है। इनमें से एक को ही सत्य मानना तथा उसका अन्य में उपचार करना मिथ्या है, क्योंकि एक का अभाव मानने पर दूसरे का भी अभाव हो जाता है और इस प्रकार वस्तुतत्त्व निःस्वभाव हो जाता है। वस्तु को सर्वथा नित्य मानने पर उसमें उदय-अस्त या क्रियाकारक योजना नहीं बन सकती। सर्वथा असत् का कभी जन्म नहीं हो सकता और सर्वथा सत् का नाश नहीं हो सकता। यथा—दीपक बुझने पर भी अन्धकार रूपी पर्याय को धारण किए हुए अस्तित्व में रहता ही है। वास्तव में विधि और निषेध दोनों कथंचित् इष्ट हैं, विवक्षावश उनमें मुख्य गौण की व्यवस्था होती है। (**द्रष्टव्य—स्वयंभूस्तोत्र, २२-२५**)

(सर्वपल्ली डा० राधाकृष्णन् के 'भारतीय दर्शन' तथा आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज के उपदेशों के आधार पर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org